भारतीय दर्शन में जैव चिकित्सकीय नीतिशास्त्रा : एक अनुप्रयुक्त दार्शनिक अनुशीलन

ओम प्रकाश प्रभाकर, तरूणेश्वर प्रसाद सिंह
शोध–छात्रा
विश्वविद्यालय दर्शनशास्त्रा विभाग
बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्रपफरपुर
असिस्टेंट प्रोपफेसर
विश्वविद्यालय दर्शनशास्त्रा विभाग
बी0आर0ए0 बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्रपफरपुर

नैतिक समस्याएँ मनुष्य को प्रत्येक स्तर पर प्रभावित करती हैं खासकर जब यह जीवन से जुड़ी हों। चिकित्सा के क्षेत्रा में सत्यवादिता और विश्वसनीयता सहित कल्याणकारी श्रोतों की स्थापना वर्तमान शदी की सबसे बड़ी चुनौती है क्योंकि हमें बिमारी के बाद ही नहीं बिमारी के पहले भी लड़ना पड़ रहा है। अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्रा में आज चिकित्सा और जैविकीय न्याय एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक है। वैश्विक स्तर पर स्वास्थ्य और चिकित्सा हमारा मानवीय आधर है जिसके प्रति अत्यध्कि संवेदनशील रहने की आवश्यकता है। चिकित्सा नीतिशास्त्रा का कार्य जहाँ एक ओर रोगग्रस्त और मरणासन्न मनुष्य की तवरित सहायता करना है वहीं दूसरी तरपफ स्वास्थ्य सेवा और चिकित्सा से जुड़े लोगों के बीच नैतिकता की स्थापना करना है। वैश्विक क्षितिज पर आज मानवाध्किार की चर्चा का कारण भी यु(में घायल मानवता की त्वरित सेवा का नैसर्गिक अध्किार प्रचारित करने का कारण प्रारम्भ हुआ है। जो लोग घायल होकर, रोगी होकर अचानक मरणासन्न अवस्था में इलाज हेतु पहुँचते हैं उनके प्रति मानवीय दृष्टि से पेश आना चिकित्सा नीतिशास्त्रा अथवा मानवता का प्रमुख उद्देश्य है और इसलिए यह नीतिशास्त्रा के सामने एक चुनौती है।

चिकित्सा नीतिशास्त्रा में रोगी, चिकित्सक तथा औषध्ि से जुड़े लोगों के बीच किस प्रकार का सम्बन्ध् है और किस प्रकार यह उचित है इस पर कई प्रकार के विचार हैं। पितृवृत्ति के समर्थक मानते हैं कि स्वास्थ्य कर्मी को रोगियों के साथ पिता के समान पेश आना चाहिए। परन्तु इस पेशे में व्यक्तिवादी ऐसे लोग भी आ गए हैं जिनके लिए ऊँचे आदर्श निरर्थक हैं केवल उनका व्यक्तिगत व्यापार है चिकित्सा। इन दोनों से भिन्न एक तीसरा वर्ग है जो पारस्परिक सहयोग की भावना रखता है और सेवा–भाव पर जोर देता है। कुल मिलाकर चिकित्सा क्षेत्रा में रोगी–चिकित्सक के बीच के सम्बन्ध् पर कोई वैचारिक एकता

स्थापित नहीं है और इसमें उपजी छूट तथा लूट के विरू(दार्शनिक नैतिक दृष्टि से लोगों को सुविचारित करना आज की महती आवश्यकता है तथा यही हमारे आलेख का निहितार्थ है। चिकित्सकीय व्यवहार नियंत्राण, मानव–प्रयोग और जेनेटिक्स आदि भी इस क्षेत्रा की समस्याएँ हैं जिनपर भारतीय दर्शन की दृष्टि में विचार अपेक्षित है।

चिकित्सा क्षेत्रा में लूट खसोट एक आम बात हो चुकी है जिसके लिए सामाजिक चेतना को विकसित करना अति आवश्यक है। पिफस महोदय इसीलिए सामाजिक चिकित्सा का नारा देते हैं और कहते हैं कि डाक्टर की जिम्मेवारी में एक मरीज नहीं बल्कि सम्पूर्ण समाज है। आज मेडिकल कॉलेजों के पाठ्यक्रम में छात्राों को सेवा–भाव और नैतिक–मूल्यों की शिक्षा शामिल नहीं है अथवा है भी तो ऐसी शिक्षा उन्हें यह संस्कार देने में पूरी तरह समर्थ नहीं है। आज आवश्यकता है ऐसे उत्प्रेरक नीतिशास्त्रा को मेडिकल कॉलेजों में पढ़ाने की जिसे पढ़कर निकलनेवाले चिकित्सकों में मानवता के प्रति सेवा–भाव विकसित हो। भारतीय दर्शन में यह नीतिशास्त्रा उपलब्ध है और यह हमारे शोध–पत्रा का गन्तव्य है। आयुर्वेद एक चिकित्सा प(ति ही नहीं बल्कि एक सम्पूर्ण जीवन–दर्शन है और चिकित्सकीय तथ्यों के अतिरिक्त इनमें एक दार्शनिक नैतिक सन्देश भी है।

चिकित्सा नीतिशास्त्रा से जुड़ी असंख्य समस्याएँ है जैसे रोगी का उचित इलाज, अनुकम्पा मृत्यु, चिकित्सा–सेवा, व्यवहार–नियंत्राण, मानव पर आधरित प्रयोग, सूचना या जेनेटिक जानकारी, निषेचन और प्रसव–स्वास्थ्य की देख–रेख, जनसंख्या नियंत्राण, बन्ध्याकरण, गर्भपात, लिंग परीक्षण, भ्रूण हत्या, शल्यक्रिया औजार का शु(िकरण, आपात चिकित्सा और सस्ती चिकित्सा सेवा, अंग प्रत्यारोपण आदि। इन सभी समस्याओं के प्रति हमारी दार्शनिक प्रतिक्रिया क्या होगी यह एक विवेच्य विषय है। ये समस्याएँ नयी हैं परन्तु भारतीय दर्शन के विराट आयुर्वेद में चिकित्सा सम्बन्धी ऐसे आदर्श और तथ्य है जिनसे वर्तमान समस्याओं का त्वरित समाधन हो सकता है। आज इलाज से अध्कि महत्वपूर्ण और प्रभावशाली मानवीय नैतिक व्यवहार है, जो चिकित्सक और रोगियों के बीच आवश्यक है। विचारकों के अनुसार 21वीं शदी मनोरोगियों की होनेवाली है जिसमें मानसिक उपचार और आत्मीय व्यवहार महत्वपूर्ण है। इन्हीं सब बातों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

जहाँ तक भारतीय चिन्तन में चिकित्सा नीतिशास्त्रा का प्रश्न है तो हम पाते हैं कि आयुर्वेद इसका मूल आधर है और इसकी विशेषता यह है कि कोई आयुर्वेद पढ़कर नैतिक हुए बिना नहीं रह सकता। शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग अथवा मेल को 'आयु' अर्थात् उम्र कहते हैं तथा जिस शास्त्रा में आयु का ज्ञान प्राप्त हो उसे 'आयुर्वेद' कहते हैं। चरक संहिता के अनुसार –

'हिताहितसुखंदःखमायुसतस्य हिताहितम्।
मनञय तञय यत्तेक्तमायुर्वेदः स उच्यते।।' अर्थात् जिससे आयु के हिताहित का ज्ञान और उसका परिणाम मालूम हो, उसे 'आयुर्वेद' कहते हैं। जिसमें आयु का हित–अहित, रोग का निदान और शमन हो वह आयुर्वेद कहलाता है। प्रत्येक प्राणी जो इस जगत में आया है, जल्दी यहाँ से विदा होना नहीं चाहता और यह सबका नैसर्गिक जन्मसि(अध्किार है। इसलिए चरक)षि कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य को, जो अपना और पराया भला चहता है या जो संसार में कोई बड़ा काम करने का अभिलाषी है आयुर्वेद–विद्या अवश्य सीखनी चाहिए। आयुर्वेद में रोगों के निदान हेतु 'माध्व–निदान पढ़ना चाहिए तो सूत्राों के लिए 'वागभट्' और शारीरिक ज्ञान के लिए 'सुश्रुत' तथा चिकित्सा के लिए 'चरक' संहिता पढ़ना सर्वोत्तम माना गया है। इन ग्रन्थों के अध्ययन द्वारा हम चिकित्सा नीतिशास्त्रा का भारतीय स्वरूप समझ सकते हैं।

चरक संहिता में सूत्तस्थान, विमानस्थान प्रभृत्ति आठ भाग हैं जिनमें शरीर स्थान के अन्तर्गत शरीर के अंगों के सिवा वेदान्त, सांख्य और वैराग्य का जिक्र है जिनसे नैतिक तत्त्वों का सूत्रापात होता है। विश्वामित्रा मुनि के पुत्रा सुश्रुत ने पिता की आज्ञा से प्राणियों के उपकार हेतु एक सौ)षिपुत्राों के साथ जाकर काशिराज देवोदास से आयुर्वेद सीखा और अस्त्रा चिकित्सा में पंडित हुए। भारत का चिकित्सा–दर्शन बहुत ही प्राचीन और व्यापक था जिसका प्रारंभ और अंत दोनो नैतिकता में है इसलिए इसे चिकित्सा नीतिशास्त्रा नहीं बल्कि नीतिशास्त्राीय चिकित्सा प(ति कहना उचित होगा।

भारतीय दर्शन की चिकित्सा प(ति में शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य लाभ द्वारा ध्र्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति को सुगम बनाया गया है। वस्तुतः आयुर्वेद की प(ति के अनुसार से कोई व्यक्ति प्रथमतः तो रोगी बनता ही नहीं और अगर बन भी जाए तो सहज ही

आरोग्य लाभ के लिए उपलब्ध हो सकता है। चरक संहिता के अनुसार चिकित्सकों को शास्त्रा और बुि(दोनों से काम लेना चाहिए। शास्त्रा दर्पण और बुि(प्रतिबिम्ब है। जैसे दर्पण और प्रतिबिम्ब से स्वरूप का ज्ञान होता है उसी प्रकार शास्त्रा और बुि(दोनों से जो चिकित्सा की जाती है वही चिकित्सा उत्तम होती है। चिकित्सकों को रोगियों से मैत्राी और करूणा बरतना चाहिए तथा उत्साह के साथ साध्य रोगियों की चिकित्सा करनी चाहिए। कभी भी स्वस्थ और मृतप्राय रोगी को दवा नहीं देनी चाहिए। इन नैतिक आचारों के वर्णन में चिकित्सा नीतिशास्त्रा के तत्त्वों की भरमार है जिनसे वर्तमान जैविकीय समस्याओं का समाधन हो सकता है।

भारतीय संस्कृति में वैदिक परम्परा के आचार्यों ने मनुष्य के अन्दर जिस भाव–भूमि का निर्माण किया था उसमें रोगी और चिकित्सक दोनों में नैतिकता का संचार स्वतः ही हो जाता है और कई वर्तमान चिकित्सकीय विभीषिकाएँ जन्म ही नहीं ले सकतीं। उदाहरणार्थ वेदों में एक व्यक्ति और पूरी प्रकृति, जीव–अजीव के बीच अन्योनाश्रित सम्बन्ध मानकर उनके साथ अत्मीयता बरतना सिखाया गया है और एक रोगी अथवा घायल के लिए तो यह आत्मीयता उसका अध्किार है। 'सर्वखलु इदं ब्रह्म' की दार्शनिक भावभूमि सभी जीव–अजीव में एक ही ब्रह्म का दर्शन कराता है। जब अन्ततः सभी ब्रह्म ही हैं तो सबके साथ सहानुभूति, एक सामान्य व्यवहार बन जाता है और ऐसा व्यक्ति कम से कम, क्रूर चिकित्सक, अनैतिक स्वास्थ्य कर्मी नहीं बन सकता। वैदिक साहित्य में न केवल जैवमण्डल बल्कि जलमण्डल और वायुमण्डल के संरक्षण और सम्मान का नीतिशास्त्रा स्थापित है। वेदों का दर्शन संसार के समस्त आबादी को निरोग बनाने का दर्शन है और यह एक महान चिकित्सकीय नैतिक आदर्श है।

)ग्वेद में हमें पृथ्वी माता के क्रोध से बचने हेतु प्रदूषण से सतर्क किया गया है ताकि भूकम्प, अकाल, महामारी आदि के रूप में भयंकर चिकित्सकीय संकट न उत्पन्न हो जाए। एक नैतिक व्यक्ति, सद्गुणी व्यक्ति अथवा विद्वान शिक्षित व्यक्ति का सबसे बड़ा दायित्व चिकित्सकीय ही है चाहे वह त्वरित चिकित्सा हो अथवा विभिन्न प्रकार से संसार के अभिशप्त जनों की सेवा हो। हमारे विश्वविद्यालयों में विद्वानों को डॉक्टर की उपाधि दिये जाने में भी यह चिकित्सकीय दायित्व छिपा है जिसमें हम अपनी विद्या द्वारा समाज के लोगों का उपचार करते हैं। 'चारित्रांस्ते शु(ामि' ;यजुर्वेद 6.14द्ध कहकर यह बताया गया है कि समाज में सद्भाव, मैत्राी, प्रसन्नता आदि का व्यवहार मन, बुि(और कर्मों की पवित्राता स्थापित करते हैं

और यही है आध्यात्मिक जीवन–दर्शन, जिसमें रोगी और चिकित्सक दोनों के आभ्यंतर के पर्यावरण की शु(होती है।

यजुर्वेद के कहे मन्त्राों ;34.1.3.4द्ध में 'मनःयजुः प्रपद्ये' कहकर मन की शु(पर जोर दिया गया है और यह आज के रोगी तथा चिकित्सक दोनों को तत्काल प्रभाव से करना चाहिए तो दुःखों और तनाव की सामूहिक निवृत्ति संभव है। चूँकि हमारा मन ही जीवात्मा को प्रकाशित करता है इसलिए रोग और चिकित्सा दोनों का सूत्राधर हमारा मन ही है। इसलिए सर्वरोग उपचार हेतु पहले यजुर्वेद कहता है कि हमारा मन शिव संकल्प से युक्त होना चाहिए। एक शु(मन ही अहिंसा, दान, यज्ञ, सेवा, परोपकार, अपरिग्रह आदि उत्पन्न कर सकता है इसलिए 'पदे–पदे मन को भद्रं मनः' ;)ग्वेद 10.25.1द्ध की चिकित्सा सर्वसुलभ की गई।

)ग्वेद में वायु, अग्नि, पृथ्वी आदि की पूजा का चिकित्सकीय प्रयोजन भी आज सर्वविदित है। विभिन्न प्रकार की विकृतियों, दोषों और रोगो से मुक्ति ही हमारा भारतीय दार्शनिक दायित्व है जो केवल दवा से नहीं देव और दिव्यता के धरण से प्राप्य है। मनः शु(और पर्यावरण शु(सबसे बड़ा चिकित्सकीय उपचार है जो हमें कई विकृतियों और रोगों से बचाता है। अपने चरित्रा की रक्षा को अहम् मानकर ही वैदिक)षियों ने पग–पग पर ईश्वर को खड़ा किया है। हमारे दार्शनिक परम्परा में चिकित्सक गुरूओं का भी अपना अनूठा दर्शन और नीतिशास्त्रा है जिसका अध्ययन हमारा दार्शनिक दायित्व है जैसे चरक, माध्व, सुश्रुत आदि कई वैदिक दार्शनिकों के अपने आचारगत जीवन–दर्शन है जिसका आधुनिक जीवन शैली में विस्तार आवश्यक है। चिकित्सा से जुड़े लोगों और रोगों से ग्रस्त. व्यक्तियों अथवा आपदाग्रस्त घायलों के प्रति ही हमारा जो नैतिक दायित्व है उसे ही चिकित्सा नीतिशास्त्रा कहते हैं और इनसे जुड़ी सभी समस्याओं का निवारण भी हम सबका कर्त्तव्य है। इसके प्रति नैतिक तत्परता और सामाजिक जागरूकता हमारा नैतिक दायित्व है और इनके समाधन स्वरूप भारतीय चिन्तन में एक वृहद् साहित्य है जिसका मंथन अपेक्षित है।

चिकित्सा नीतिशास्त्रा के रूप में भारतीय दर्शन का अगर अवलोकन किया जाए तो कई बातें सामने आती हैं। एक यह कि भारतीय दर्शन अपनी सम्पूर्णता में एक आरोग्य दर्शन ही है इसलिए यह एक वृहद् चिकित्सा नीतिशास्त्रा है। दूसरा यह कि वर्तमान वैश्विक

परिदृश्य में अनुप्रयुक्त नैतिक चेतना के अन्तर्गत पर्यावरण और चिकित्सा सम्बन्धी नैतिक चेतना अहम है जिसकी समस्याओं का उचित समाधन भारतीय दर्शन के मनीषियों का चिकित्सकीय दर्शन या दृष्टिकोण है। परमानन्द, परमारोग्य की प्राप्ति भारतीय दर्शन का लक्ष्य तथा त्रिविध दुःखों की निवृत्ति इसका वृहत् चिकित्सा नीतिशास्त्रा है। योग की साध्ना इक्कीसवीं शदी का एकमात्रा चिकित्सा नीतिशास्त्रा है इसलिए चिकित्सा नीतिशास्त्रा के रूप में अलग से खोजना कठिन है और वैसे भी चिकित्सा नीतिशास्त्रा वर्तमान पाश्चात्स समाज की नयी मांग के कारण दर्शन में आया है जबकि भारतीय दर्शन के आस्तिक–नास्तिक दोनों सम्प्रदायों में स्वास्थ्य तथा आरोग्य की प्रतिष्ठा है। बु(तो अपने समय के महान चिकित्साशास्त्राी कहे जा सकते हैं जिनका हृदय एक किंकर्तव्यविमूढ़ चिकित्सक की भांति जन–जन के जरा–मरण सहित विविध दुःखों को देखकर दुःखी होता था इसलिए बु(बनने के पहले और बाद की दोनों अवस्थाओं में उन्होंने दुःख निवृति को ही अपना तात्कालिक लक्ष्य बनाया। लोगों ने कई दार्शनिक प्रश्न किए परन्तु उन्होंने तत्काल उपचार को महत्वपूर्ण मानते हुए कहा कि अगर तीर लग जाए तो पहले घायल का उपचार करो न कि तीर कहाँ से आया? इसे किसने बनाया? कैसे आया? आदि प्रश्न किया जाए। यह संदेश है विश्व के चिकित्सक दार्शनिकों को क्योंकि पाश्चात्य अस्तित्ववादियों ने रोगियों और घायलों को नित्य देखनेवाले चिकित्सकों तथा संसार का यथार्थ नित्यप्रति देखनेवाला श्मशानवादी दोनों को ही सच्चा दार्शनिक करार दिया है।

चिकित्सा और आरोग्य केवल चिकित्सक का ही नहीं एक–एक व्यक्ति का दायित्व है। जन–जन का इसके प्रति जागरूक होना ही परम आरोग्य की उपलब्धि करा सकता है और इस क्षेत्रा में भारतीय दर्शन आज भी अग्रणी तथा अन्तरिम है। स्वभावतः हमारा पहला चिकित्सक तो हम स्वयं होते हैं इसलिए भारतीय चिन्तन चिकित्साशास्त्रा और दर्शनशास्त्रा में बहुत बरतता नहीं दिखाई पड़ता है। कई श्लोक और दोहे ऐसे हैं जो दवा से ज्यादा कारगर साबित होते हैं और इन्हें सर्वसुलभ कराना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। बु(ने दुःख निवृत्ति हेतु जिस अष्टांगिक मार्ग का दर्शन दिया उससे दुःखों की उत्पत्ति में अप्रत्याशित कमी लायी जा सकती है जिसके पफलस्वरूप कई मानसिक–शारीरिक रोगों की उत्पत्ति ही नहीं हो सकेगी। त्वरित उपचार और दीर्घ उपचार दोनों का चिकित्सा नीतिशास्त्रा में महत्वपूर्ण स्थान होना चाहिए और यही भारतीय दर्शन का आह्वान है। सांख्य के तत्वों को

समझना और आयुर्वेद के छः रसों का सन्तुलन स्थापित करना हमारी मूल दार्शनिक स्थापना है जिसमें शल्य और बायोजेनेटिक की अवधरणा भी बहुत प्राचीन है।

'चिकित्सा चन्द्रोदय' बाबू हरिदास वैद्य द्वारा लिखित 'हरिदास एण्ड कम्पनी' की एक प्रमुख पुस्तक है जिसके पृष्ठ 52 में महर्षियों की उक्त नैतिक शिक्षा का प्रमाण मिलता है। हमारे)षि कहते हैं – 'हे वैद्य यदि तुझे कर्म सि(, अर्थसि(, अर्थसि(, यशोलाभ और स्वर्ग की कामना है तो सदा गुरू के उपदेशों पर ध्यान दो, हमेशा सभी जीवों की मंगल कामना कर, सर्वान्तेःकरण से रोगियों के आरोग्य में सावधनी से लगा रह, अपनी जीविका के लिए रोगियों से अत्यन्त ध्न न ले, मन में भी पर–स्त्राी गमन की इच्छा न कर, पराये ध्न का लोभ न पाल और सपफेद कपड़े पहनाकर तथा अपने चिकित्सा–यन्त्राों को सापफ रख कर, भूलकर भी मदिरापान मत कर, सब का भला चाह, ध्र्म में मति रख, बातों को याद रखा कर तथा वैद्योपयोगी समाग्री का संग्रह करता चल आदि कई नैतिक सन्देश आज महत्वपूर्ण हैं।

भारतीय संस्कृति में चिकित्सक का काम करने वाला अनिवार्य रूप से दार्शनिक होता है अथवा जो दार्शनिक होता है वह संसार का चिकित्सक भी होता है। चरक संहिता के अनुसार आरोग्य का नाम सुख और रोग का नाम दुःख है –

'नास्ति रोगो बिनादोषैर्यस्मात्तस्माच्यिकित्सकः। अनुद्रमपि दोषाणां लिंगैर्व्याध्मिुपाचरेत।।' अर्थात सभी रोग दोषों से उत्पन्न होते हैं और जहाँ रोग का नाम पता न चले वहाँ रोग को दोषों का पता लगाकर पकड़ना चाहिए। घटे हुए दोषों को बढ़ाकर और बढ़े हुए दोषों को घटाकर सन्तुलित करना चाहिए क्योंकि दोषों की विषमता का नाम ही रोग और समता का नाम ही आरोग्य है। चिकित्सा, चिकित्सक और रोग की ऐसी दार्शनिक व्याख्या विश्व के किसी दर्शन, चिकित्साशास्त्रा अथवा चिकित्सकीय नीतिशासत्रा में दुर्भल है, यह केवल भारतीय चिन्तन की उपब्धि है। हारीत मुनि ने लिखा है कि तपस्वी, ब्राह्मण, स्त्राी, बालक, दीन–दुर्बल, बु(िमान, पण्डित, महात्मा, वेदपाठी, साधु, अनाथ और बन्धुहीन रोगी की चिकित्सा, वैद्य द्वारा बिना कुछ लिये पुण्यार्थ करना चाहिए और इनकी चिकित्सा में तनिक भी विलम्ब न करें। परन्तु दुर्भाग्यवश आज के चिकित्सकों को सर्वाध्कि लोभ उपर्युक्त वर्जित चीजों से ही होता है इसलिए अगर चिकित्सा निःशुल्क करें तो चिकित्सा व्यापार कैसे चल सकेगा? ऐसे दीन–हीन

रोगियों के लिए तो आज भी संसार चिकित्सकविहिन है। ऐसे रोगियों के प्रति तत्परता का संदेश भारतीय दर्शन और आयुर्वेद का चिकित्सा नीतिशास्त्रा है जो इक्कीसवीं शदी के मनुष्य का वैश्विक विकल्प है। आयुर्वेद में राजा, साहुकार, ठाकुर और सेनापति की चिकित्सा करके वैद्य को ध्न निर्भिकता से लेने का निर्देश है जबकि विदित है कि आज का चिकित्सक इसी वर्ग से कम ध्न लेता है और पीड़ितों से ध्न उगाही करता है जिससे कई नैतिक दोष उजागर होते हैं।

अतः आज भारतीय चिकित्सा नीतिशास्त्रा का वैश्विक संचार आवश्यक है जिसमें यह सन्देश है कि निर्ध्नों की चिकित्सा करने में वैद्य को लोभ त्याग कर पुण्य संचय करना चाहिए तथा ध्नवान से ध्न उगाही करना चाहिए। सामूहिक नैतिक भागीदारी हेतु ही भारतीय चिन्तन का अयुर्वेद 'एक पथ्य न कि हजार दवा' पर जोर देता है और यही आज के चिकित्सकों की शैली होनी चाहिए। भारतीय चिकित्सा नीतिशास्त्रा का मूल मन्त्रा है सांसारिक जीवन को सुख और सपफलता का वितरण करना और यह ।चचसपमक ;अनुप्रयुक्तद्ध या प्रायोगिक रूप से हमारे आचार–विचार का हिस्सा होना चाहिए। जब भी हम कोई भयानक दुर्घटना का साक्षात् करते हैं तो हमारा मन विक्षिप्त होने लगता है, उसकी वैद्युतिक शक्ति का क्षय होने लगता है तथा ऐसे में दार्शनिक दायित्व है कि हम पीड़ित में त्वरित–चिकित्सकीय नैतिकता का विस्तार करें। हमारे चित्त और मस्तिष्क का हमारे हृदय और पफेपफड़े पर क्षण–क्षण प्रभाव पड़ता है इसलिए भारतीय चिकित्सा नीतिशास्त्रा में चित्त और मस्तिष्क शुि(पर अत्यध्कि जोर दिया गया। खुशी की खबर और स्त्राी–प्रसंग की इच्छा से हृदय की ध्ड़कन तेज एवं बुरी खबर से मन्द हो जाती है जबकि इसी ध्ड़कन पर नाड़ी की चाल निर्भर है और नाड़ी की चाल द्वारा ही भारतीय वैद्य, स्वास्थ्य का आकलन करते हैं। कुल मिलाकर भारतीय चिन्तन में चिकित्सा, मनुष्य की वृत्ति नहीं उसका ध्र्म है, उसका दर्शन है। इसीलिए आयुर्वेद को अमृतों में प्रध्न माना गया।

सन्दर्भ सूची :

1. अयुर्वेद का इतिहास एवं परिचय, डॉ0 विद्याध्र शुक्ल एवं डॉ0 रविदत्त त्रिापाठी, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू0ए0, बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली।
2. अनुप्रयुक्त नीतिशास्त्रा, एम0पी0 चौरसिया, मोतीलाल बनारसी दास।

3. चिकित्सा चन्द्रोदय, बाबू हरिदास वैद्य, 'हरिदास एण्ड कम्पनी'
4. सुश्रुत
5. चरक संहिता
6. पिटर सिंगर, प्रैक्टिकल एथिक्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस ए–2000
7. एथिक्स : थ्योरी एण्ड प्रैक्टिकल, जे0पी0 थिरॉक्स, ग्लेनको,1982